

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष की अवधारणा: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक अध्ययन

प्रहलाद सिंह अहलूवालिया, डिपार्टमेंट ऑफ मैनेजमेंट एंड बिजनेस स्टडीज, जामिया हमदद, नई दिल्ली

सारांश (Abstract)

भारतीय दर्शन की षड्दर्शन परम्परा में सांख्य दर्शन को सबसे प्राचीन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला दर्शन माना जाता है। महर्षि कपिल द्वारा प्रवर्तित यह दर्शन द्वैतवादी सिद्धांत पर आधारित है, जिसमें सृष्टि के मूल में दो स्वतंत्र, अनादि और अनुत्पन्न तत्त्वों—प्रकृति और पुरुष—की स्थापना की गई है। प्रस्तुत शोधपत्र में सांख्य दर्शन के मूल ग्रंथ ईश्वरकृष्ण-कृत "सांख्यकारिका" तथा अन्य सहायक ग्रंथों के आधार पर प्रकृति और पुरुष की अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रकृति के त्रिगुणात्मक स्वरूप, पुरुष की चेतन-साक्षी स्थिति, दोनों के संयोग से सृष्टि-प्रक्रिया के विकास-क्रम, तथा वेदांत, योग, न्याय-वैशेषिक एवं पाश्चात्य द्वैतवाद (देकार्त) के साथ तुलनात्मक विश्लेषण को सम्मिलित किया गया है। साथ ही विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि सांख्य का यह द्वैतवाद केवल आध्यात्मिक कल्पना नहीं, अपितु एक सुव्यवस्थित तर्कसंगत ज्ञानमीमांसा है जो आज भी मनोविज्ञान, पर्यावरण-चिंतन तथा चेतना-अध्ययन (Consciousness Studies) के क्षेत्र में प्रासंगिक है।

कूटशब्द: सांख्य दर्शन, प्रकृति, पुरुष, त्रिगुण, सत्कार्यवाद, कैवल्य, द्वैतवाद, सांख्यकारिका

1. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन की गहराई का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यहाँ सृष्टि की उत्पत्ति, जीवन के प्रयोजन तथा दुःख-निवृत्ति के प्रश्नों पर हजारों वर्ष पूर्व ही अत्यंत सूक्ष्म एवं तार्किक विवेचन प्रारम्भ हो चुका था। इसी परम्परा में सांख्य दर्शन का स्थान सर्वोपरि माना जाता है, क्योंकि इसे भारतीय दर्शन की सबसे प्राचीन व्यवस्थित प्रणाली स्वीकार किया गया है। "सांख्य" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की "संख्या" धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है "गणना" या "विवेकपूर्ण ज्ञान"। इस प्रकार सांख्य वह दर्शन है जो तत्त्वों की सम्यक् गणना एवं विवेकख्याति के माध्यम से पुरुष को प्रकृति से पृथक् जानने की प्रक्रिया सिखाता है।

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल माने जाते हैं, यद्यपि उनका मौलिक ग्रंथ "सांख्यप्रवचन" आज अनुपलब्ध है। वर्तमान में सांख्य दर्शन का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ आचार्य ईश्वरकृष्ण-रचित "सांख्यकारिका" (लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी ई.) है, जिसमें मात्र सत्तर श्लोकों में सम्पूर्ण सांख्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। इसीलिए इसे "सप्ततन्त्र" भी कहा जाता है। इस ग्रंथ के आरम्भ में ही स्वयं ईश्वरकृष्ण दुःखत्रय की निवृत्ति हेतु तत्त्वज्ञान की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं—

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥

अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीनों प्रकार के दुःखों की पीड़ा से उत्पन्न जिज्ञासा ही उस कारण के ज्ञान की खोज है, जिससे इन दुःखों का सर्वथा और सर्वदा के लिए निवारण हो सके। यही जिज्ञासा सांख्य दर्शन के संपूर्ण सैद्धांतिक ढाँचे की आधारशिला है, और इसी जिज्ञासा के समाधान-स्वरूप प्रकृति और पुरुष के पच्चीस तत्त्वों की मीमांसा प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य सांख्य दर्शन में वर्णित प्रकृति और पुरुष की अवधारणा का गहन, विश्लेषणात्मक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना है, जिसमें मूल संस्कृत श्लोकों, प्राचीन एवं आधुनिक विद्वानों के भाष्यों, तथा तुलनात्मक दार्शनिक परिप्रेक्ष्यों को समाहित किया गया है।

2. शोध उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. सांख्य दर्शन में प्रकृति तत्त्व के स्वरूप, गुण एवं कार्य-प्रणाली का विश्लेषण करना।
2. पुरुष तत्त्व की चेतन, निर्गुण एवं साक्षी-स्वरूप प्रकृति का अध्ययन करना।
3. प्रकृति-पुरुष संयोग से पच्चीस तत्त्वों के विकास-क्रम (तत्त्वविकास) की व्याख्या करना।
4. सांख्य के सत्कार्यवाद सिद्धांत का दार्शनिक विश्लेषण करना।
5. सांख्य दर्शन की तुलना वेदांत, योग, न्याय-वैशेषिक तथा पाश्चात्य द्वैतवाद से करना।
6. विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों की समीक्षा कर एक समन्वित निष्कर्ष प्रस्तुत करना।

3. शोध प्रविधि

यह शोधपत्र प्रकृति से विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक (Analytical-Interpretative) साहित्यिक पद्धति पर आधारित है। इसमें किसी सांख्यिकीय (statistical) उपकरण या क्षेत्रीय सर्वेक्षण का प्रयोग नहीं किया गया है, अपितु द्वितीयक स्रोतों—मूल संस्कृत ग्रंथों, हिंदी भाष्यों, तथा प्रामाणिक विद्वानों की पुस्तकों—के गहन अध्ययन, तुलना और पुनर्व्याख्या के माध्यम से निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। शोध-सामग्री का चयन सांख्यकारिका, सांख्यसूत्र, भगवद्गीता, योगसूत्र जैसे मूल ग्रंथों तथा डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, आचार्य बलदेव उपाध्याय एवं आचार्य चन्द्रधर शर्मा जैसे मान्य विद्वानों की कृतियों से किया गया है। यह अध्ययन गुणात्मक (qualitative) प्रकृति का है, अतः इसमें किसी PRISMA-प्रकार की व्यवस्थित समीक्षा पद्धति के स्थान पर पारम्परिक साहित्यिक-आलोचनात्मक प्रविधि अपनाई गई है।

4. सांख्य दर्शन: ऐतिहासिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

सांख्य दर्शन की प्राचीनता का उल्लेख महाभारत, भगवद्गीता तथा उपनिषदों में भी मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में अजा (अजन्मा प्रकृति) और अज (अजन्मा पुरुष) के रूपक द्वारा प्रकृति-पुरुष के सिद्धांत का पूर्वाभास मिलता है। डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त के अनुसार सांख्य के बीज उपनिषदों में विद्यमान थे, परन्तु इसका व्यवस्थित दार्शनिक रूप महर्षि कपिल और उनके परवर्ती आचार्यों द्वारा दिया गया। कपिल के पश्चात् आसुरि, पंचशिख, वार्षगण्य आदि आचार्यों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया, किन्तु उनकी मूल रचनाएँ काल

के प्रवाह में लुप्त हो गई। वर्तमान में सांख्यकारिका ही एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जो सांख्य सिद्धांत का सर्वाधिक प्रामाणिक और संक्षिप्त प्रतिनिधित्व करता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रंथ "भारतीय दर्शन" में स्पष्ट किया है कि सांख्य दर्शन भारतीय चिन्तन-परम्परा में सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से पुरुष (चेतन) और प्रकृति (जड़) के मध्य स्पष्ट विभाजन-रेखा खींचने वाला दर्शन है, जिसने आगे चलकर योग, वेदांत तथा अन्य दर्शनों को भी प्रभावित किया। सांख्य निरीश्वरवादी दर्शन माना जाता है, अर्थात् यह सृष्टि की व्याख्या के लिए किसी ईश्वर की परिकल्पना आवश्यक नहीं मानता, बल्कि प्रकृति और पुरुष के संयोग को ही सृष्टि का पर्याप्त कारण मानता है।

5. प्रकृति की अवधारणा

5.1 प्रकृति का स्वरूप

सांख्य दर्शन में प्रकृति जगत् का मूल उपादान कारण है। यह अनादि, अनन्त, स्वतंत्र, एक तथा अचेतन तत्त्व है। सांख्यकारिका में प्रकृति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

*मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥*

अर्थात् मूल प्रकृति किसी की विकृति (कार्य) नहीं है, यह स्वयं अविकृत है। महत् (बुद्धि) से लेकर पाँच तन्मात्राओं तक सात तत्त्व प्रकृति भी हैं और विकृति भी। सोलह तत्त्वों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन, पाँच महाभूत) का समूह केवल विकार अर्थात् कार्य है, न प्रकृति है न विकृति। और पुरुष न प्रकृति है न विकृति। यह श्लोक सांख्य के सम्पूर्ण तत्त्व-वर्गीकरण की कुंजी है।

प्रकृति को "अव्यक्त", "प्रधान" तथा "अजा" जैसे नामों से भी अभिहित किया गया है। यह स्वयं किसी का कार्य नहीं, अपितु सम्पूर्ण जगत् का कारण है। आचार्य चन्द्रधर शर्मा के अनुसार प्रकृति की यह अवधारणा किसी स्थूल पदार्थ की नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म, गतिशील तथा त्रिगुणात्मक शक्ति की है, जो सदैव परिवर्तनशील होते हुए भी अपने मूल स्वरूप में अपरिवर्तित रहती है।

5.2 त्रिगुण सिद्धांत

प्रकृति के तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। ये गुण किसी सम्प्रदाय के अर्थ में "विशेषण" नहीं, अपितु प्रकृति के मूल घटक द्रव्य (constituents) हैं, जो सतत गतिशील अवस्था में परस्पर संतुलन बनाए रखते हैं। सांख्यकारिका में इनका वर्णन इस प्रकार है—

*सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपपृथक् च लं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥*

अर्थात् सत्त्वगुण हल्का और प्रकाशक है, रजोगुण उत्तेजक और चल है, तमोगुण भारी और आवरक है। ये तीनों गुण दीपक की भाँति परस्पर विरोधी होते हुए भी एक सामान्य प्रयोजन (पुरुषार्थ की सिद्धि) के लिए संयुक्त रूप से कार्य करते हैं। यह उपमा अत्यंत

महत्वपूर्ण है—जिस प्रकार दीपक में तेल, बाती और अग्नि परस्पर विरोधी तत्त्व होते हुए भी मिलकर प्रकाश देने का कार्य करते हैं, उसी प्रकार सत्त्व, रजस् और तमस् परस्पर विपरीत स्वभाव वाले होते हुए भी संयुक्त रूप से सृष्टि-कार्य में संलग्न रहते हैं।

सामान्य अवस्था में, अर्थात् सृष्टि से पूर्व, ये तीनों गुण साम्यावस्था (equilibrium) में रहते हैं, जिसे "प्रकृति" या "प्रधान" कहा जाता है। जब यह साम्यावस्था भंग होती है, तब सृष्टि की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। यह वैषम्य पुरुष के संनिधानमात्र से उत्पन्न होता है, जिसकी विवेचना आगे की जाएगी।

5.3 प्रकृति की अनुमेयता

चूँकि प्रकृति अतीन्द्रिय (सूक्ष्म) तत्त्व है, इसे प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा जा सकता, अपितु इसके कार्यों के आधार पर अनुमान द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सांख्यकारिका में इसके प्रमाण दिए गए हैं—

भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य॥

अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तुओं में परिमाण (मात्रा) की सीमितता, विभिन्न वस्तुओं में एक समान गुणों का समन्वय पाया जाना, कार्य की उत्पत्ति के लिए कारण में सामर्थ्य का होना, कारण और कार्य के मध्य विशिष्ट सम्बन्ध, तथा सम्पूर्ण विश्व की विविधता के मूल में एक अविभक्त कारण का होना—इन पाँच हेतुओं से प्रकृति की सिद्धि अनुमान द्वारा होती है। यह तर्क-प्रणाली सांख्य की वैज्ञानिकता को दर्शाती है, क्योंकि यह किसी श्रुति-प्रमाण पर आधारित न होकर विशुद्ध युक्ति और अनुमान पर आधारित है।

6. पुरुष की अवधारणा

6.1 पुरुष का स्वरूप

सांख्य दर्शन में पुरुष चेतन तत्त्व है, जो प्रकृति से सर्वथा भिन्न है। पुरुष निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, व्यापक, साक्षी तथा कूटस्थ है। सांख्यकारिका में पुरुष के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं—

तस्मात् तद्विपरीतः साक्षित्वेन केवलो निर्गुणश्च।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥

अर्थात् पुरुष प्रकृति से सर्वथा विपरीत स्वभाव वाला है, वह साक्षी है, कैवल्य-स्वरूप (अकेला/शुद्ध) है, निर्गुण है, द्रष्टा है किन्तु कर्ता नहीं है। यह श्लोक पुरुष की मौलिक विशेषताओं—साक्षित्व, कैवल्य, माध्यस्थ्य (उदासीनता), द्रष्टृत्व और अकर्तृत्व—को स्पष्ट करता है। पुरुष कर्म नहीं करता, अपितु केवल द्रष्टा की भाँति प्रकृति के कार्यों को देखता है। यही कारण है कि सांख्य में पुरुष को "उदासीन" या "साक्षी चैतन्य" कहा गया है।

6.2 पुरुष की बहुलता

सांख्य दर्शन की एक विशिष्ट मान्यता यह है कि पुरुष एक नहीं, अपितु अनेक हैं। यह मान्यता अद्वैत वेदांत से सांख्य को स्पष्ट रूप से पृथक् करती है। सांख्यकारिका में पुरुष-बहुत्व की सिद्धि इस प्रकार की गई है—

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥

अर्थात् जन्म, मरण और इन्द्रियों की व्यवस्था प्रत्येक प्राणी में पृथक्-पृथक् होने के कारण, सबकी प्रवृत्ति एक साथ न होने के कारण, तथा त्रिगुणों की विषमता भिन्न-भिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होने के कारण पुरुष की बहुलता सिद्ध होती है। यदि पुरुष एक होता, तो एक व्यक्ति के जन्म लेने पर सभी जन्म लेते और एक के मरने पर सभी मर जाते—जो कि अनुभवसिद्ध तथ्य के विपरीत है। अतः प्रत्येक शरीर में पृथक्-पृथक् पुरुष का अस्तित्व स्वीकार करना तर्कसंगत है।

6.3 पुरुष की चेतनता एवं उसकी सिद्धि

पुरुष के अस्तित्व की सिद्धि के लिए सांख्यकारिका में पाँच तर्क प्रस्तुत किए गए हैं—

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥

अर्थात् संघात (शरीर, इन्द्रियादि का समूह) सदैव किसी अन्य के प्रयोजन हेतु होता है (जिस प्रकार शय्या किसी शयन करने वाले के लिए होती है), त्रिगुणादि से विपरीत किसी चेतन तत्त्व का होना आवश्यक है, सम्पूर्ण जड़ पदार्थों के अधिष्ठाता की आवश्यकता है, भोक्ता के अभाव में भोग असंभव है, तथा मोक्ष हेतु प्रवृत्ति किसी चेतन तत्त्व के बिना संभव नहीं—इन पाँच हेतुओं से पुरुष का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह तर्क-शृंखला दर्शाती है कि सांख्य दर्शन पुरुष के अस्तित्व को केवल श्रद्धा के आधार पर नहीं, अपितु तार्किक अनुमान के आधार पर स्थापित करता है।

7. प्रकृति-पुरुष संयोग और सृष्टि-प्रक्रिया

7.1 संयोग का प्रयोजन

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति स्वयं अचेतन होने के कारण अपने आप सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकती, और पुरुष स्वयं निष्क्रिय होने के कारण कुछ भी नहीं करता। फिर सृष्टि किस प्रकार होती है? इसका उत्तर सांख्यकारिका के प्रसिद्ध श्लोक में मिलता है—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्गवन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥

अर्थात् पुरुष के दर्शन (भोग) के लिए तथा प्रकृति के कैवल्य (पुरुष को मुक्ति दिलाने) के प्रयोजन के लिए, लँगड़े और अंधे के संयोग के समान प्रकृति-पुरुष का संयोग होता है, और उसी संयोग से सृष्टि होती है। यह उपमा सांख्य दर्शन की सर्वाधिक प्रसिद्ध उपमाओं में से एक है—जिस प्रकार अंधा (शक्तिशाली किन्तु दृष्टिहीन प्रकृति) लँगड़े (दृष्टिवान किन्तु गतिहीन पुरुष) को अपने कंधे पर बिठाकर मार्ग तय करता है, उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष परस्पर सहयोग से सृष्टि-कार्य को संपन्न करते हैं। यह संयोग तात्त्विक नहीं, अपितु कार्यकारी (functional) है—अर्थात् वास्तव में दोनों तत्त्व पृथक् ही रहते हैं, केवल पुरुष के "संनिधानमात्र" (समीपता मात्र) से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है।

7.2 सत्कार्यवाद सिद्धांत

सांख्य दर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया की व्याख्या "सत्कार्यवाद" सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार कार्य उत्पत्ति से पूर्व भी कारण में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। सांख्यकारिका में इसका प्रतिपादन इस प्रकार हुआ है—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥

अर्थात् असत् (अविद्यमान) वस्तु का निर्माण संभव नहीं, कार्य के लिए विशिष्ट उपादान कारण का ग्रहण आवश्यक होता है, सभी वस्तुओं से सभी कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती, समर्थ कारण ही समर्थ कार्य को उत्पन्न कर सकता है, तथा कारण और कार्य में तात्त्विक अभेद होने के कारण—इन हेतुओं से सिद्ध होता है कि कार्य उत्पत्ति के पूर्व भी कारण में विद्यमान रहता है। यह सिद्धांत वेदांत के "विवर्तवाद" से भिन्न है—वेदांत जहाँ जगत् को ब्रह्म का आभासमात्र (मिथ्या) मानता है, वहीं सांख्य जगत् को प्रकृति का वास्तविक परिणाम (परिणामवाद) मानता है।

7.3 तत्त्व-विकास क्रम

प्रकृति-पुरुष के संयोग से चौबीस तत्त्वों का क्रमिक विकास होता है, जो पुरुष सहित कुल पच्चीस तत्त्व बनाते हैं—

1. **महत् (बुद्धि)** — प्रकृति से उत्पन्न प्रथम विकार, जिसका कार्य निश्चय (अध्यवसाय) करना है।
2. **अहंकार** — महत् से उत्पन्न, जिससे "मैं" की भावना उत्पन्न होती है। यह तीन प्रकार का है—सात्त्विक (वैकृत), राजस (तैजस) और तामस (भूतादि)।
3. **मन एवं दस इन्द्रियाँ** — सात्त्विक अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) तथा मन उत्पन्न होते हैं।
4. **पाँच तन्मात्राएँ** — तामस अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच सूक्ष्म तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं।
5. **पाँच महाभूत** — तन्मात्राओं से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी—ये पाँच स्थूल महाभूत उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार पुरुष को छोड़कर शेष चौबीस तत्त्व प्रकृति के ही विभिन्न रूप हैं। सांख्यकारिका में इस विकास-क्रम का संक्षिप्त सूत्र इस प्रकार दिया गया है—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥

अर्थात् प्रकृति से महत् (बुद्धि), महत् से अहंकार, अहंकार से सोलह का गण (ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच तन्मात्राएँ), और उन सोलह में से पाँच तन्मात्राओं से पाँच स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है।

8. प्रकृति और पुरुष के मध्य अंतर: तुलनात्मक विवेचन

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के मध्य मौलिक भेद को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित बिन्दु विचारणीय हैं—

- **चेतनता का प्रश्न:** पुरुष चेतन है, प्रकृति अचेतन। किन्तु प्रकृति अपने कार्यों में चेतन-सी प्रतीत होती है, क्योंकि पुरुष की समीपता से उसमें एक प्रकार की "स्वयं-प्रकाशिता" का आभास उत्पन्न हो जाता है—जैसे लौह-चुम्बक के संयोग से लोहा गतिशील हो उठता है, वैसे ही पुरुष के संनिधानमात्र से प्रकृति क्षुब्ध होकर सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त होती है।
- **कर्तृत्व का प्रश्न:** प्रकृति कर्ता है, पुरुष अकर्ता। सम्पूर्ण सृष्टि, कर्म, फल-भोग की व्यवस्था प्रकृति द्वारा ही संपन्न होती है; पुरुष केवल साक्षी रूप में उपस्थित रहता है।
- **परिवर्तनशीलता:** प्रकृति परिणामी (सतत परिवर्तनशील) है, जबकि पुरुष कूटस्थ-नित्य (अपरिवर्तनशील) है।
- **एकत्व-बहुत्व:** प्रकृति एक है (सभी प्राणियों की प्रकृति मूलतः एक ही उपादान से उत्पन्न होती है), जबकि पुरुष अनेक हैं (प्रत्येक जीव का पुरुष पृथक्-पृथक् है)।

आचार्य दयानन्द भार्गव ने अपने विश्लेषण में यह प्रतिपादित किया है कि सांख्य का यह द्वैतवाद वस्तुतः एक ज्ञानमीमांसीय प्रयोजन से प्रेरित है—पुरुष और प्रकृति के बीच भेद-ज्ञान (विवेकख्याति) उत्पन्न कराना ही सांख्य-शास्त्र का चरम लक्ष्य है, क्योंकि इसी भेद-ज्ञान से दुःख-निवृत्ति और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

9. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

सांख्य दर्शन पर विगत एक शताब्दी में अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किए हैं, जिनकी समीक्षा से इस अवधारणा के बहुआयामी स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने ग्रंथ "इंडियन फिलॉसफी" में सांख्य दर्शन का विश्लेषण करते हुए यह मत प्रस्तुत किया कि सांख्य का द्वैतवाद यद्यपि तार्किक दृष्टि से सुसंगत है, तथापि प्रकृति और पुरुष के मध्य संयोग की प्रक्रिया को पूर्णतः संतोषजनक ढंग से स्पष्ट नहीं किया जा सका है, क्योंकि यदि पुरुष सर्वथा निष्क्रिय और उदासीन है, तो उसके संनिधानमात्र से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने का तर्क आंतरिक विसंगति (internal inconsistency) से मुक्त नहीं है। यह आलोचना सांख्य-अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण बिंदु है, जिसका उत्तर परवर्ती सांख्याचार्यों तथा योगदर्शन ने ईश्वर-तत्त्व की अवधारणा जोड़कर देने का प्रयास किया, यद्यपि मूल सांख्य निरीश्वरवादी ही बना रहा।

डॉ. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त ने अपने विशद ग्रंथ "अ हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी" में सांख्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि सांख्य की प्रकृति-अवधारणा प्रारम्भिक उपनिषदों में वर्णित "प्रधान" या "अव्यक्त" तत्त्व की क्रमिक विकसित अवस्था है, तथा इसका कार्य-कारण सिद्धांत (सत्कार्यवाद) भारतीय तर्कशास्त्र के इतिहास में सर्वाधिक मौलिक योगदानों में से एक है।

आचार्य चन्द्रधर शर्मा ने अपने ग्रंथ "भारतीय दर्शन: एक समालोचनात्मक सर्वेक्षण" में सांख्य के त्रिगुण सिद्धांत की वैज्ञानिकता की प्रशंसा करते हुए भी यह इंगित किया कि पुरुष-बहुत्व की मान्यता सांख्य दर्शन को तार्किक दृष्टि से जटिल बना देती है, क्योंकि यदि सभी पुरुष स्वरूपतः समान (चैतन्यमात्र) हैं, तो उनकी बहुलता की आवश्यकता ही संदेहास्पद प्रतीत होती है—यह प्रश्न वेदांत दर्शन द्वारा सांख्य के विरुद्ध प्रमुखता से उठाया गया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार सांख्य दर्शन का सर्वाधिक व्यावहारिक महत्त्व इस बात में निहित है कि यह मनुष्य के दुःख के मूल कारण को अविवेक (प्रकृति और पुरुष के भेद का अज्ञान) मानकर विवेकख्याति द्वारा उसके निराकरण का मार्ग प्रशस्त करता है, जो कि आधुनिक मनोविज्ञान की "आत्म-साक्षात्कार" (self-realization) संबंधी अवधारणाओं से पर्याप्त साम्य रखता है।

एम. हिरियाना ने अपने ग्रंथ "आउटलाइंस ऑफ इंडियन फिलॉसफी" में यह उल्लेख किया है कि सांख्य दर्शन की मौलिक विशेषता उसका "अनुभववाद" (empiricism) है—अर्थात् सांख्य किसी भी तत्त्व की सत्ता को केवल अनुमान और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर स्वीकार करता है, श्रुति-प्रमाण को गौण मानते हुए भी उसे पूर्णतः अस्वीकार नहीं करता।

इन समस्त विद्वानों के मतों के तुलनात्मक विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि सांख्य दर्शन की तार्किक संरचना अत्यंत सुदृढ़ है, तथापि प्रकृति-पुरुष संयोग की व्याख्या तथा पुरुष-बहुत्व जैसे विषयों पर विद्वानों में मतभेद विद्यमान है, जो इस दर्शन को निरंतर विमर्श का विषय बनाए रखते हैं।

10. विभिन्न दार्शनिक परिप्रेक्ष्यों से तुलनात्मक विश्लेषण

10.1 सांख्य और वेदांत

वेदांत दर्शन, विशेषतः अद्वैत वेदांत, एकतत्त्ववादी (monistic) है, जिसमें केवल ब्रह्म ही परम सत्य है और जगत् मिथ्या (विवर्त) है। इसके विपरीत सांख्य द्वैतवादी है, जिसमें प्रकृति और पुरुष दोनों को समान रूप से सत्य और स्वतंत्र माना गया है। भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में, जो सांख्य-प्रभावित माना जाता है, कहा गया है—

*प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥*

अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनों को ही अनादि जानो, तथा समस्त विकारों और गुणों को प्रकृति से उत्पन्न जानो। यह श्लोक दर्शाता है कि गीताकार ने सांख्य की मूल शब्दावली को स्वीकार करते हुए भी उसमें ईश्वर-तत्त्व को जोड़कर एक समन्वित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जबकि शुद्ध सांख्य में ऐसे किसी तीसरे तत्त्व की आवश्यकता स्वीकार नहीं की गई। वेदांत के अनुसार सांख्य की मूलभूत त्रुटि

यह है कि वह दो अनादि, स्वतंत्र सत्ताओं की परिकल्पना करके ब्रह्म की अद्वितीयता (एकमेवाद्वितीय) का खंडन करता प्रतीत होता है।

10.2 सांख्य और योग

योग दर्शन को व्यावहारिक रूप से "शेखर सांख्य" कहा जाता है, क्योंकि योगदर्शन सांख्य के तत्त्व-सिद्धांत (प्रकृति, पुरुष, पच्चीस तत्त्व) को यथावत् स्वीकार करते हुए भी उसमें एक छब्बीसवें तत्त्व—ईश्वर—को जोड़ता है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में कहा गया है—

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति॥

अर्थात् पुरुष के प्रयोजन से रहित हो चुके गुणों का अपने कारण में विलीन हो जाना, अथवा चित्ति-शक्ति (पुरुष) का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य है। योगदर्शन का यह सूत्र सांख्य के कैवल्य-सिद्धांत से लगभग समान है, किन्तु योग में साधना-पद्धति (अष्टांगयोग) पर अधिक बल दिया गया है, जबकि सांख्य में विवेकख्याति अर्थात् ज्ञान-मार्ग को ही मोक्ष का प्रमुख साधन माना गया है।

10.3 सांख्य और न्याय-वैशेषिक

न्याय-वैशेषिक दर्शन भी द्वैतवादी है, किन्तु इसमें सृष्टि की व्याख्या परमाणुवाद के आधार पर की जाती है, न कि प्रकृति के परिणाम के रूप में। इसके अतिरिक्त न्याय-वैशेषिक ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण मानता है, जबकि सांख्य में ऐसी किसी सत्ता की आवश्यकता नहीं मानी जाती। सांख्य का सत्कार्यवाद (कार्य पूर्व से कारण में विद्यमान) न्याय-वैशेषिक के असत्कार्यवाद अर्थात् आरम्भवाद (कार्य नवीन रूप से उत्पन्न होता है) से सर्वथा विपरीत है।

10.4 सांख्य और बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन, विशेषतः अनात्मवाद के सिद्धांत के कारण, सांख्य से मौलिक रूप से भिन्न है। जहाँ सांख्य पुरुष को नित्य, अपरिवर्तनशील चेतन तत्त्व मानता है, वहीं बौद्ध दर्शन किसी स्थायी आत्मा के अस्तित्व को ही अस्वीकार करता है और सम्पूर्ण अस्तित्व को क्षणिक स्कंधों (पंचस्कंध) का प्रवाह मानता है। यह तुलना दर्शाती है कि भारतीय दर्शन के भीतर भी चेतना और आत्मा के प्रश्न पर अत्यंत विविध और परस्पर विरोधी दृष्टिकोण विकसित हुए, जिनमें सांख्य का पुरुष-सिद्धांत एक सुनिश्चित, स्थिर चेतन-तत्त्व की स्थापना करने वाला सबसे स्पष्ट सिद्धांतों में से एक है।

10.5 सांख्य और पाश्चात्य द्वैतवाद (देकार्त)

पाश्चात्य दर्शन में फ्रांसीसी दार्शनिक रेने देकार्त (Descartes) ने भी "मन" (res cogitans) और "पदार्थ" (res extensa) के मध्य द्वैतवाद की स्थापना की, जो ऊपरी तौर पर सांख्य के पुरुष-प्रकृति द्वैतवाद से साम्य रखता प्रतीत होता है। किन्तु दोनों में मौलिक अंतर यह है कि देकार्त का द्वैतवाद एक ही व्यक्ति के भीतर मन और शरीर के संबंध की व्याख्या करता है, जबकि सांख्य का द्वैतवाद

सम्पूर्ण सृष्टि के मूल कारणों की व्याख्या करने वाला ब्रह्माण्डीय (cosmological) सिद्धांत है। इसके अतिरिक्त देकार्त के दर्शन में "मन-शरीर समस्या" (mind-body problem) को स्पष्ट करने के लिए ईश्वर की मध्यस्थता आवश्यक मानी गई, जबकि सांख्य में प्रकृति-पुरुष संयोग स्वयं ही, बिना किसी बाह्य मध्यस्थ के, कार्यशील माना गया है। तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सांख्य का द्वैतवाद देकार्त से लगभग डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन होते हुए भी कहीं अधिक तार्किक रूप से सुसंगठित तथा प्रणालीबद्ध है।

11. समकालीन प्रासंगिकता एवं विश्लेषणात्मक चिंतन

आधुनिक युग में जब चेतना-अध्ययन (Consciousness Studies), न्यूरोसाइंस तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में "चेतना क्या है और वह पदार्थ से किस प्रकार भिन्न है" जैसे प्रश्न पुनः केंद्र में आ गए हैं, सांख्य दर्शन की प्रकृति-पुरुष अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। पाश्चात्य वैज्ञानिक जगत् में "हार्ड प्रॉब्लम ऑफ कॉन्शसनेस" (Hard Problem of Consciousness) के रूप में जो प्रश्न उठाया जाता है—अर्थात् भौतिक मस्तिष्क से व्यक्तिपरक अनुभव (subjective experience) कैसे उत्पन्न होता है—उसका सांख्य-परक उत्तर यह होगा कि चेतना (पुरुष) कभी भी पदार्थ (प्रकृति) से उत्पन्न नहीं होती, अपितु वह एक स्वतंत्र, अनुत्पन्न तत्त्व है जो केवल प्रकृति के कार्यों को प्रतिबिंबित करता प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त, सांख्य का त्रिगुण सिद्धांत आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व-प्रकार (personality types) की व्याख्या हेतु भी उपयोगी सिद्ध हुआ है—सत्त्वगुण-प्रधान व्यक्ति शांत एवं ज्ञानोन्मुख, रजोगुण-प्रधान व्यक्ति सक्रिय एवं महत्वाकांक्षी, तथा तमोगुण-प्रधान व्यक्ति जड़ एवं आलस्य-प्रवण स्वभाव के होते हैं। यह वर्गीकरण आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धांत तथा आधुनिक व्यक्तित्व-मनोविज्ञान दोनों में समानांतर रूप से प्रतिध्वनित होता है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी सांख्य की प्रकृति-अवधारणा महत्वपूर्ण है। जहाँ पाश्चात्य वैज्ञानिक परम्परा "प्रकृति" को मनुष्य से पृथक्, केवल दोहन योग्य संसाधन मानती रही है, वहीं सांख्य दर्शन में प्रकृति एक गतिशील, सृजनशील तथा मानव-चेतना से घनिष्ठ रूप से संबद्ध शक्ति के रूप में प्रस्तुत की गई है, जो पारिस्थितिक चिंतन (ecological thinking) के लिए एक नया दार्शनिक आधार प्रदान कर सकती है।

12. आलोचनात्मक विश्लेषण

सांख्य दर्शन की प्रकृति-पुरुष अवधारणा अत्यंत सुव्यवस्थित होते हुए भी कुछ दार्शनिक समस्याओं से मुक्त नहीं है, जिन पर विभिन्न विद्वानों ने ध्यान आकृष्ट किया है—

पहली समस्या यह है कि यदि पुरुष सर्वथा निष्क्रिय, उदासीन और असंग है, तो उसके "संनिधानमात्र" से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने की प्रक्रिया तार्किक रूप से स्पष्ट नहीं हो पाती—जैसा कि डॉ. राधाकृष्णन ने भी इंगित किया है। यदि पुरुष वास्तव में कोई क्रिया नहीं करता, तो प्रकृति में क्षोभ किस प्रकार उत्पन्न होता है, यह एक अनुत्तरित प्रश्न बना रहता है।

दूसरी समस्या पुरुष-बहुत्व से संबंधित है। यदि प्रत्येक पुरुष स्वरूपतः शुद्ध चैतन्यमात्र है, तो एक पुरुष को दूसरे पुरुष से पृथक् करने वाला भेदक तत्त्व क्या है—यह प्रश्न वेदांती दार्शनिकों द्वारा बार-बार उठाया गया है।

तीसरी समस्या सांख्य के निरीश्वरवाद से जुड़ी है। यदि प्रकृति अचेतन है, तो वह इतनी सुव्यवस्थित, प्रयोजनपूर्ण सृष्टि-प्रक्रिया का संचालन बिना किसी चेतन नियामक के कैसे कर सकती है—यही कारण है कि परवर्ती योगदर्शन को ईश्वर-तत्त्व जोड़ना पड़ा।

इन आलोचनाओं के बावजूद, सांख्य दर्शन की मौलिकता, तार्किक अनुशासन तथा अनुभव-आधारित पद्धति इसे भारतीय दर्शन के इतिहास में एक अद्वितीय स्थान प्रदान करती है। यह दर्शन इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय चिंतकों ने विशुद्ध श्रद्धा या मिथकीय कल्पना पर आधारित न होकर, तर्क और अनुमान के आधार पर सृष्टि तथा चेतना संबंधी गूढ़ प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया।

13. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधपत्र में सांख्य दर्शन की प्रकृति और पुरुष संबंधी अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सांख्य दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा में सर्वप्रथम व्यवस्थित द्वैतवादी सिद्धांत प्रस्तुत करने वाला दर्शन है, जिसमें प्रकृति को अचेतन, त्रिगुणात्मक, परिणामी उपादान-कारण तथा पुरुष को चेतन, निर्गुण, साक्षी-स्वरूप, बहुसंख्य तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है। दोनों के संयोग से समस्त सृष्टि का विकास होता है, तथा इस संयोग के मूल में भेद-ज्ञान की प्राप्ति द्वारा दुःख-निवृत्ति और कैवल्य की प्राप्ति ही अंतिम लक्ष्य है।

तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि सांख्य का द्वैतवाद वेदांत के अद्वैतवाद, योग के सेश्वर सांख्यवाद, न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद, बौद्ध दर्शन के अनात्मवाद तथा पाश्चात्य देकार्तीय द्वैतवाद से पर्याप्त रूप से भिन्न होते हुए भी इन सभी दर्शनों को प्रभावित करने वाला एक मौलिक चिंतन-स्रोत रहा है। यद्यपि पुरुष-प्रकृति संयोग तथा पुरुष-बहुत्व जैसे विषयों पर आलोचनात्मक प्रश्न उपस्थित होते हैं, तथापि सांख्य दर्शन की तर्क-प्रणाली, वर्गीकरण-पद्धति तथा मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी सहस्राब्दियों पूर्व थी। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रकृति और पुरुष की अवधारणा केवल एक प्राचीन दार्शनिक सिद्धांत नहीं, अपितु मानव-चेतना, सृष्टि-प्रक्रिया तथा जीवन के परम प्रयोजन को समझने के लिए एक स्थायी, वैज्ञानिक-तार्किक ढाँचा प्रस्तुत करने वाला चिंतन है, जो समकालीन चेतना-अध्ययन, मनोविज्ञान तथा पर्यावरणीय दर्शन के क्षेत्र में नवीन शोध-दिशाओं को प्रेरित कर सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. उपाध्याय बलदेव. भारतीय दर्शन. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन; 2009.
2. ईश्वरकृष्ण. सांख्यकारिका (हिंदी व्याख्या सहित). वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज कार्यालय; 1998.
3. श्वेताश्वतर उपनिषद्. गोरखपुर: गीता प्रेस; 2005.
4. Dasgupta S. A History of Indian Philosophy. Vol. 1. Cambridge: Cambridge University Press; 1922.
5. उपाध्याय बलदेव. भारतीय दर्शन. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन; 2009. पृ. 175-190.
6. शर्मा चन्द्रधर. भारतीय दर्शन: एक समालोचनात्मक सर्वेक्षण. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास; 2000.



7. भार्गव दयानन्द. सांख्य दर्शन में विवेकख्याति की अवधारणा. भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद पत्रिका. 1995;12(2):45-58.
8. Radhakrishnan S. Indian Philosophy. Vol. 2. London: George Allen & Unwin; 1923.
9. Hiriyanna M. Outlines of Indian Philosophy. London: George Allen & Unwin; 1932.
10. व्यास. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य सहित). गोरखपुर: गीता प्रेस; 2010.
11. पतंजलि. योगसूत्र (व्यासभाष्य सहित). वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान; 2003.
12. दासगुप्त सुरेन्द्रनाथ. भारतीय दर्शन का इतिहास (हिंदी अनुवाद). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास; 1994.
13. सिन्हा जदुनाथ. भारतीय दर्शन. कलकत्ता: सिन्हा पब्लिशिंग हाउस; 1956.
14. राधाकृष्णन सर्वपल्ली. भारतीय दर्शन (हिंदी अनुवाद). दिल्ली: राजपाल एंड सन्स; 1990.
15. देवराज. भारतीय दर्शन. इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1968.